भविष्य के प्रतिरोध

पुनीत कुमार

नारीवादी निगाह से (2021)

निवेदिता मेनन, (अनु.) नरेश गोस्वामी

राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली.

मूल्य ₹ 299.

पृष्ठ : 240.

महिला, स्त्री या नारी की स्वअस्तित्व की यथार्थ स्थापना एवं मान्यता तथा सहअस्तित्व की सात्विक अवधारणा के प्रति सांसारिक सहमति का निर्माण, वर्तमान इक्कीसवीं शताब्दी की एक अहम चुनौती है। यह विषय तब और संगीन हो जाता है जब विषय वस्तु अर्थात नारी उस जीवन-दर्शन, जो महिला अस्मिता व स्वस्थ सहअस्तित्व की बुनियाद को रेतीला बनाए रखने में महारत रखता हो, की मुरीद होती है तथा जब महिला सशक्तीकरण के प्रहसन को पुष्ट करने वाले जीवन-दर्शन की चुनौतियों को चारित्रिक स्खलन, अधर्म, सभ्यता व संस्कृति का पतन आदि-आदि विशेषणों से संबोधित करने को स्वाभिमान स्वीकार कर लेती हैं। शताब्दियों से स्त्रियाँ छल का आखेट होती रही हैं। व्यवस्था का धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और सभ्यताजनित साँचा महिला मानसिकता को इस प्रकार अपने पाश में जकड़े हैं कि वह स्वयं उन þ ´ ± को अपना जीवन-दर्शन स्वीकार कर लेती

हैं जो नारी की अस्मिता को शून्य करने वाली विभिन्न शाखाओं से उत्पन्न होती हैं। यह पाशविक p ´ - महिला मानस को अनेक धार्मिक, सांस्कृतिक, पारिवारिक एवं पारंपरिक अनुष्ठानों के नाम पर गर्भ से ही अपने आकर्षण का लखलखा सुँघा कर अपनी आज्ञाकारिता का मुरीद बना लेती हैं। इस आकर्षण व आज्ञाकारिता की जकड़न इतनी सशक्त एवं p ´ ŋ होती है कि आजीवन वे महिला संसार की दिशाएँ तथा सीमाएँ तय करने सदृश्य निर्णायक भूमिका का निर्वहन करने लगते हैं। स्त्री गर्भाशय से लेकर प्रज्ञा तक एवं मन से लेकर मानस तक इस छल, कपट, पाखंड और ऐय्यारी का आखेट होती रहती हैं। रोमांचक तथ्य यह है कि स्त्री संसार को इस कपट और ऐय्यारी का कोई अहसास नहीं होता है। मात्र अहसास की कमतरी नहीं अपितु उनके प्रति आज्ञा पालन का भाव आजीवन बना रहता है। वह इस प्रकार के छल व प्रपंच को जीवन का सारांश एवं शाश्वत सत्य मानकर श्रद्धावनत् रहती है। स्पष्ट है कि व्याधिग्रस्त को ही व्याधि व विकार की लेशमात्र अनुभूति नहीं होती है, महिला अस्मिता की इस सनातन चुनौती को अभी भी द्रवित करना शेष है।

इस विषय पर अग्रसर होने से पूर्व स्पष्ट होना आवश्यक है कि महिला अस्मिता की चुनौती का प्रश्न प्रमुख रूप से सामान्य वर्ग व जनगण सामान्य के प्रश्नों का समाधान करना चाहता है। राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं प्रशासनिक वर्ग स्वयं में इतना सक्षम व सशक्त होता है कि वहाँ महिला अस्मिता का सवाल अर्थहीन है अपितु यह वर्ग वह अंश है जो नारी के अस्तित्व की सार्थकता साबित करने में महत्त्वपूर्ण किरदार हो सकते हैं मगर इन वर्गों में नारीवाद जैसे प्रश्न विमर्श की परिधि में कदाचित ही स्थान पाते हैं। स्पष्ट है कि सामान्य जनगण की अर्द्धांश अर्थात् नारी को उसका औचित्य व अपरिहार्य देना महिला अस्मिता या नारीवाद की शीर्ष चुनौती है। 2021 में एक किताब *नारीवादी निगाह से* इन्हीं औचित्यपूर्ण एवं अपरिहार्य दिशाओं व दशाओं की पड़ताल करती हुई प्रकाश में आई है। यह मूलतः अंग्रेज़ी में लिखी किताब *सीईंग लाइक अ फ़ेमिनिस्ट* का हिंदी भाषा में अनुवाद है। किताब की लेखिका निवेदिता मेनन हैं जबकि अनुवादक नरेश गोस्वामी हैं इसका प्रकाशन राजकमल नई दिल्ली द्वारा किया गया है। किताब का शीर्षक *नारीवादी निगाह से* स्वयं स्पष्ट करता है कि जीवन की कई प्रमुख स्थितियों एवं परिस्थितियों को नारीवादी नज़र से देखे जाने की सामयिक ज़रूरत है। सवाल ख़ास यह है कि नारीवादी या नारीवाद से क्या आशय है? लेखिका निवेदिता मेनन नारीवाद के आशय को स्पष्ट करते हुए कहती हैं कि, '...नारीवादी नज़रिया इस बात को महत्त्व देता है कि दुनिया में जेंडर के इर्द-गिर्द खड़ी दर्जा बंदी ही वह किल्ली है जिस पर सामाजिक व्यवस्था टिकी हुई है तथा 'पुरुष' और 'स्त्री' जैसे परिचय-चिह्नों के साथ जीना दरअसल दो अलग-अलग सच्चाइयों के साथ जीना होता है। लेकिन इसी के साथ, नारीवादी होने का एक मतलब हर उस प्रभुत्वशाली सत्ता के मुक़ाबले हाशिए पर सिमटा और अपेक्षाकृत शक्तिहीन प्राणी भी होना है, जो केंद्र की पूरी

जगह को हजम कर जाती है। ...नारीवादी का वास्ता केवल पुरुष या स्त्रियों से नहीं है वह समझ की इस प्रक्रिया की ओर इशारा करता है कि 'पुरुष' और 'स्त्री' जैसी अस्मिताओं की रचना किस तरह की जाती है तथा उन्हें पितृसत्ता के सामयिक और स्थानिक तंत्रों में किस तरह फिट किया जाता है ...' नारीवादी होने का मतलब यह है कि व्यक्ति न केवल यह समझे कि विभिन्न अस्मिताओं का पदानुक्रम – उनका वर्चस्वशाली या अधीनस्थ होना – समय और स्थान की भिन्नताओं से तय होता है, बल्कि उसे जेंडर-निर्माण की प्रक्रिया के प्रति भी सजग रहना चाहिए।' (पृ.7-8) निवेदिता मेनन नारीवाद के अर्थ की इस पृष्ठभूमि में महिला अस्मिता के अपरिहार्य उपेक्षित अंशों का विश्लेषण व अन्वेषण ज़रूरी संवेदनशीलता व तर्कों के साथ करती हैं। पुस्तक मात्र स्त्री अस्मिता के उपेक्षित अंशों का नहीं अपितु तथाकथित 'महिला सशक्तीकरण' के दाँव-पेचों का भी तथ्यात्मक खुलासा करती है अर्थात् महिला सशक्तीकरण के जयकारों से किस प्रकार शासन व प्रशासन स्त्री अस्मिता के अपरिहार्य पहलुओं को फुसलाता, बहलाता रहा है, इसकी भी तार्किक पड़ताल *नारीवादी निगाह से* किताब की ख़ूबी है।

किताब को छह अध्यायों में बाँटा गया है। सातवाँ अध्याय निष्कर्ष के रूप में है। किताब के छह अध्याय क्रमशः इस प्रकार हैं – परिवार, देह, कामना, यौन हिंसा, नारीवादी तथा महिलाएँ और पीड़ित या एजेंट। परिवार, देह, कामना व यौन हिंसा कदाचित वे शब्द या स्थितियाँ है जो महिला अस्मिता के विद्रूप व विकार ग्रस्त स्वरूप को स्पष्ट करते हैं। 'परिवार' से ही महिला अस्मिता की चुनौतियाँ p ´ ŋ होने लगती है। 'देह' वह आधार बना हुआ है, जिसके कारण एक मानव प्राणी को 'औरत' बन कर हर हाल में जीना पड़ रहा है, 'कामना' वह ज्वालामुखी है जहाँ महिला को झुलसना होता है और इसे छुपाने व दबाने में उसे महारत भी हासिल करनी होती है भले ही उसे कुंठित व विकृत व्यक्तित्व की पोशाक जाने-अनजाने धारण करनी पड़ी। 'यौन हिंसा' कदाचित वह स्थिति है, जब एक स्त्री परिवार, देह और कामना की लीक तोड़कर आगे आती है, तो उसे पौरुषीय दंभ का सामना करना होता है सामान्य तौर पर यह 'दंभ' परंपरा, संस्कृति व धर्म का चोला ओढ़कर नारी को स्त्री बनाए रखने में सिद्धहस्त होता है। यह 'यौन हिंसा' शारीरिक, मानसिक व मनोवैज्ञानिक किसी भी स्वरूप में हो सकती है। लेखिका का मानना है कि नारीवादी होना हर उस वर्चस्ववादी शैली का प्रतिरोध है जो स्वतंत्रता व समानता का पैरोकार नहीं है। *नारीवादी निगाह से* किताब में इस आशय के अनेक सशक्त संकेत है कि नारी स्वनिर्णय लेने के उपालंभों से जिस प्रकार बहलती रहती है वह उसे पीड़ित बनाने के साथ-साथ उन स्थितियों की एजेंट भी बना देती है जिसका उन्मूलन अभीष्ट नारीवाद का लक्ष्य है।

परिवार

परिवार नारीवाद के प्रतिरोध का आधार बिंदु है। परिवार ही वह संस्था है जो महिला अस्मिता को भोथरा बनाने वाली परंपराओं और मान्यताओं को शिरोधार्य करने वाली

मानसिकताओं को प्रशंसनीय मानता है। पुस्तक के इस अंश में उन साज़िशों की तार्किक पड़ताल की गई है जिनसें नारीवाद की असहमति है और जिन स्थितियों को परिवर्तित व परिमार्जित करना नारीवाद का मुक़ाम है। इस अध्याय में नारीवाद के विषमलिंगी व पितृसत्तात्मक परिवार की अवधारणा, ऐसे परिवारों में जेंडर का भारी-भरकम वजूद, विषमलिंगी अवधारणा, ऐसे परिवारों में निजी संपत्ति के स्वामित्व निर्धारण का परंपरागत ढाँचा, पितृत्व निर्धारण की सनातन परंपरा, परिवार एवं समाज में श्रम के यौनिक विभाजन का पारंपरिक रूप, हिंदू कोड बिल 1955, 1956 का खोखलापन, हिंदू विवाह का पारंपरिक स्वरूप और दहेज जैसी विकृतियों इत्यादि से प्रतिरोध व मुठभेड़ को लेखिका ने पूरी संवेदनशीलता के साथ रेखांकित किया है। प्रतिरोध के इस विश्लेषण को अग्रलिखित सूत्रों में बाँट सकते हैं 'जेंडर के लिहाज से उचित व्यवहार का प्रश्न प्रजनन संबंधी यौनिकता की वैधता से इस क़दर जुड़ा है कि दोनों को अलग करके नहीं देखा जा सकता।' (पृ.16) 'क्या परिवार केवल पितृसत्तात्मक विषमलिंगी परिवार ही हो सकता है : एक पुरुष, एक स्त्री और पुरुष के बच्चे।' (पृ.17) 'जेंडर अक्सर उम्र पर भारी पड़ जाता है ...परिवार का वयस्क पुरुष किसी उम्रदराज महिला से ज़्यादा ताक़तवर होता है।' (पृ.17) 'एक संस्था के रूप में परिवार ग़ैर-बराबरी पर आधारित है।' (पृ.18) 'मातृत्व एक जीव-वैज्ञानिक तथ्य है, जबकि पितृत्व केवल एक समाजशास्त्रीय कल्पना है। पितृसत्ता के लिए यह चीज़ एक स्थायी चिंता की बात होती है। यही चिंता स्त्रियों की यौनिकता पर पहरेदारी बिठाने की मानसिकता तैयार करती है।' (पृ.18) 'श्रम का यौनिक विभाजन पहले से तय कर देता है कि महिलाओं को वैतनिक कार्य के बजाय घर के अवैतनिक काम को तरजीह देनी होगी।' (पृ.22) यह अंश स्पष्ट करते हैं कि 'परिवार' ही वह माँद है जहाँ परंपरा, संस्कृति और धर्म के नाम पर महिला अस्मिता के सामने वे स्थितियाँ पैदा और परिपक्व होती हैं जिन्हें नारीवाद उन्मूलित करना अपरिहार्य समझता है। यही कारण है कि लेखिका यह आह्वान करती है कि विवाह की अपरिहार्यता को द्रवित किया जाना ज़रूरी है तथा ऐसे परिवार आधारित विकल्प पर विचार होना चाहिए जो 'ग़ैर-शादीशुदा' प्रकृति को मान्य करते हों। लेखिका का यह कथन मनन योग्य है 'अगर विवाह पर आधारित परिवार मौजूदा व्यवस्था की बुनियाद है तो परिवार की बुनियाद यौन-भिन्नता पर टिकी है और यही वह चीज़ है जिसे हमें धक्का देने की ज़रूरत है।' (पृ.54) पूरी किताब में इस तरह के कई सशक्त अभूतपूर्व आह्वान है जिसे पढ़कर सामान्य तौर पर अथवा 'प्रथम दृष्टया' चकित होना पड़ सकता है, लेकिन जब विचार में यह आता है कि नारीवाद को सर्वप्रथम सदियों पुरानी परंपराओं, रीति-रिवाजों और स्त्री विरोधी संस्कृति से ही मुठभेड़ करना है तब ऐसे आह्वान सामयिक प्रतीत होने लगते हैं।

देह

'देह' शीर्षक के अध्याय का प्रारंभ लेखिका इस उपेक्षित सत्य के उद्घाटन से करती है कि 'अगर उन्हें उन्नत वक्ष और लम्बे बाल

दिखते हैं तो उसे वे औरत कहते हैं। जब उन्हें दाढ़ी और मूँछ दिखाई देती हैं तो वे उसे मर्द कहने लगते हैं लेकिन गौर करिए कि इन दोनों के बीच में जो 'आत्म' मँडराता है वह न मर्द होता है, न औरत...' नारीवाद इसी 'आत्म' की मान्यता, स्थापना, सशक्तता और निर्णायक बनाने के साध्य से अभिप्रेत है। संसार का यौन आधारित विभाजन अर्थात् महिला व पुरुष वर्गों में, बहुत प्राचीन व्यवस्था नहीं है। लेखिका का यह रहस्योद्घाटन कि 'स्त्री और पुरुष के वर्गीकरण का यह विचार एक आधुनिक दिमाग को पूरी तरह प्राकृतिक लग सकता है, लेकिन सच्चाई यह है कि यह विचार केवल चार सौ वर्ष पुराना है' (पृ.57) पुनः सामान्य तौर पर अचंभित करता है। इस अध्याय में लेखिका ने अफ्रीकी समाज के अनेक उदाहरण देकर यह स्पष्ट किया है कि मर्द व स्त्री का विभाजन वहाँ के समाजों में बहुत हाल की घटना है। 'अफ्रीका में जेंडर की ईजाद औपनिवेशिक हस्तक्षेप की उसी प्रक्रिया में हुई जिसके तहत औपनिवेशिक शक्तियाँ अफ्रीकी समाजों को यूरोप की शब्दावली में प्रस्तुत कर रही थी।' (पृ.60) अमेरिका भी इस जेंडर के भेदभाव से यूरोप से प्रभावित होने से पहले अछूता था। समलिंगी विवाह की परंपरा वहाँ के कई कबीलों में प्रचलन में था। यही, जेंडर को नकारने की प्रवृत्ति भारतवर्ष में भक्तिकालीन कवियों के मानस में भी अनुभूत किया जा सकता है। उस दौर का दर्शन जेंडर जैसे सांसारिक बंधन से उन्मुक्त होकर अपने प्रियतम आराध्य के प्रति तन व मन से अर्पित होना और उसमें एकाकार हो जाना ही अपना परमोच्च साध्य स्वीकारता है। 'भक्त कवियों ने लौकिक यौनाकर्षण से विमुख होकर और अपने यौन आवेग को निराकार करके अपने प्रिय आराध्य को समर्पित कर दिया। ध्यान रहे कि यह यौनिकता के भय या उससे घृणा का परिणाम नहीं था।' (पृ.60) अपितु यौनिकता से उन्मुक्त व बेपरवाह होने का परिणाम था अथवा सांसारिकता या सांसारिक बंधन की प्रासंगिकता व निर्ममता के प्रति अस्वीकारोक्ति का भाव था। दूसरे शब्दों में कृत्रिम जेंडरीकरण के उन्मूलन के प्रति आह्वान था। इन सबका ठोस कारण था 'भक्ति आंदोलन के उदय तक पुरुषत्व/स्त्रीत्व की धारणाओं का मानकीकरण हो चुका था तथा लिंग उचित/अनुचित होने का विचार जड़ जमा चुका था। संत कवि इन्हीं धारणाओं का विरोध कर रहे थे।' (पृ.61)

सीमोन द बोउवा ने लिखा है कि स्त्री पैदा नहीं होती है, स्त्री बनाई जाती है। इसी बात को थोड़ा सिलसिलेवार लिखते हुए लेखिका निवेदिता मेनन कहती हैं कि 'जैव-निर्धारणवाद स्त्रियों के सदियों से चले आ रहे दमन को वैधता प्रदान करने का एक अहम तरीक़ा है इसलिए जैव-निर्धारणवाद को चुनौती देना नारीवादी राजनीति का बहुत ज़रूरी कार्यभार है।' (पृ.63) इस परिप्रेक्ष्य में इस कथन से असहमत होना संभव नहीं है कि 'शुरू में 'लिंग' (सेक्स) का इस्तेमाल पुरुष और स्त्री के जीव वैज्ञानिक अंतर को दर्शाने के लिए किया जाता था, जबकि 'जेंडर' का प्रयोग इस बुनियादी अंतर के साथ जुड़े व्यापक सांस्कृतिक तात्पर्यों के किया जाता था।' (पृ.63) *नारीवादी निगाह से* किताब

व्यवस्था का धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और सभ्यताजनित साँचा महिला मानसिकता को इस प्रकार अपने पाश में जकड़े हैं कि वह स्वयं उन शृंखलाओं को अपना जीवन-दर्शन स्वीकार कर लेती हैं जो नारी की अस्मिता को शून्य करने वाली विभिन्न शाखाओं से उत्पन्न होती हैं।

इसी जेंडर के ख़िलाफ़ बिगुल बजाती है। देह जैसे जैविक आधार पर जैसा सांसारिक ठप्पा लग जाता है उस देह की संपूर्ण संस्कृति व सभ्यता ही उसी ठप्पे से निर्धारित होने लगती है और वह देह उसी के अनुसार संचालित होने लगता है यह ठप्पा मात्र स्त्री या पुरुष के रूप में नहीं है अपितु जाति, वर्ग, नस्ल, अंचल, आयु, काला, सफ़ेद व विकलांग किसी भी रूप में हो सकता है। नारीवाद इसी देह के पिंजरे को तोड़ना चाहता है, जेंडर की विवशता को क्षीण करना चाहता है, जो कि इतना स्वाभाविक व नैसर्गिक रूप ले चुका है कि इस जेंडर का आखेट ही आखेटक की भूमिका का निर्वाह पूरी श्रद्धा से कर रहा है।

कामना

इसके बाद के अध्याय 'कामना' में निवेदिता मेनन नारीवादी कामना के ऊपर होने वाले एक और प्रभावशाली प्रहार 'विषमलिंगी यौनेच्छा' का मुद्दा उठाती हैं। लेखिका का यह तर्क है कि यदि यौनेच्छा एक नैसर्गिक भावना है फिर उसमें लिंग भेद क्यों होना चाहिए। अर्थात् विषमलिंगी यौनेच्छा ही क्यों स्वीकार्य होना चाहिए? यदि यौनेच्छा स्वाभाविक रूप से समलिंगी आकर्षण से प्रेरित है तो उस पर विषमलिंगी यौनेच्छा क्यों थोपा जाए? इसके इतर सब कुछ अपराध या पाप की श्रेणी में क्यों स्वीकारा जा रहा है? लेखिका अनेक अध्ययन निष्कर्षों के आधार पर कहती हैं कि... 'प्राचीन भारत में समलैंगिक यौन संबंधों को अपराध की श्रेणी में नहीं रखा जाता था। दरअसल यह एक ऐसा क़ानून है जिसे ब्रिटिश औपनिवेशिक सरकार ने उन्नीसवीं सदी में लागू किया था' (पृ.93) इसी अध्याय में लेखिका सामान्यतः अपरिचित शब्द 'क्वीयर' को स्पष्ट करती हैं। उनका मानना है कि 'कई राजनीतिक समूहों को 'एलजीबीटीआई (लेस्बियन, गे, बाइ-सेक्सुअल, ट्रांसजेंडर, इंटरसेक्स) के बजाय 'क्वीयर' का इस्तेमाल करना ज़्यादा अर्थवान लगता है। एलजीबीटीआई में पहचान को स्थिर और स्थायी बना देने की प्रवृत्ति देखी जा सकती है ...इसीलिए 'क्वीयर' जैसे पद का प्रयोग करना राजनीतिक दृष्टि से समझ-बूझकर उठाया गया क़दम है जो यौनिक पहचान तथा यौन-कामना में निहित परिवर्तनीयता (संभावित अथवा वास्तविक) पर अलग से ज़ोर देने का काम करता है।' (पृ. 96-97) इसी अंश में 'क्वीयर' शब्द को और स्पष्ट इस प्रकार

किया गया है। 'क्वीयर' नाम का यह शब्द उन समुदायों की ओर इंगित करता है जो स्वयं को समलैंगिक (स्त्री और पुरुष दोनों) कहते हैं अथवा ख़ुद के लिए इस शब्द का इस्तेमाल न करते हुए भी यह मानते हैं कि सम-लिंगी कामनाओं तथा यौनिकता पर केवल पहचान का ठप्पा नहीं लगाया जा सकता...।' (पृ.99)

इस अध्याय का सबसे अहम सवाल है कि 'नारीवादी राजनीति का सुपात्र कौन होगा? क्या पुरुष-समलैंगिकों को नारीवादी राजनीति में शामिल किया जा सकता है? क्या इसमें दोनों प्रकार के स्त्री और पुरुष ट्रांस-जेंडर लोगों की जगह भी हो सकती है?' (पृ.101) ...क्या हिजड़ों को नारीवादी आंदोलन का अंग माना जा सकता है? दरअसल, यह एक ऐसा सवाल है, जिसे आसानी से हल नहीं किया जा सकता है। (पृ. 101, 103) वस्तुतः यह सारे सवाल सदियों पुरानी चली आ रही मान्यताओं से सीधा मुठभेड़ करते हैं, स्पष्ट है कि त्वरित समाधान संभव नहीं है। सर्वप्रथम इन मान्यताओं की पुख्ता ज़मीन को हिलाना होगा जो वर्षों से पितृसत्तावादी, वर्चस्ववादी राजनीति व जेंडर जैसे सशक्त एवं मान्य पहचान की मद से ताक़तवर होते रहे हैं। लेखिका के इस तर्क से पुनः असहमत होना कठिन है कि 'हम जिस विषम-लैंगिकता को 'सामान्य' समझते हैं वह असल में एक ऐसी निर्मिति है जिसे क़ायम रखने के लिए कई प्रकार के सांस्कृतिक, जैव-चिकित्सकीय और आर्थिक नियंत्रण के काम में लगे रहते हैं, और हम यह समझने की कोशिश करें कि वर्ग, जाति, तथा जेंडर के पदानुक्रम के पीछे नियंत्रण की यही बहुमुखी व्यवस्था सक्रिय रहती है तो फिर यह स्वीकार करना पड़ेगा कि हम सभी क्वीयर होते हैं या हम सभी में क्वीयर होने का बीज पड़ा रहता है।' (पृ.106)

यौन हिंसा

इसके बाद के अध्याय का शीर्षक है 'यौन हिंसा'। इस अध्याय में लेखिका ने बलात्कार को लेकर न्यायपालिका, समाज, नारीवादी मानस, पितृसत्तात्मक सोच, पुलिस, प्रशासन, साहित्यिक व अकादमिक वर्ग और एक्टिविस्ट आदि की क्या सोच एवं आचरण की शैली है, इस पर तथ्यात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया है। इतना ही नहीं बलात्कार के विभिन्न रूपों – वैवाहिक बलात्कार, सुरक्षा बलों द्वारा किया जाने वाला बलात्कार, कार्यस्थल के बलात्कार एवं विश्वविद्यालयों में होने वाले बलात्कार इत्यादि को भी विश्लेषण में शामिल किया गया है। इसी अंश में निवेदिता मेनन ने स्त्रियों को अपमानित किए जाने के लिए प्रयुक्त होने वाले शब्द 'छिनाल' व 'बेशरम' पर नए नज़रिये से अपनी बात रखी है। इस अंश के अध्ययन के बाद यह स्पष्ट होता है कि बलात्कार तो पितृसत्तावादी सोच का परिणाम है ही, इस कृत्य पर नियंत्रक सिद्ध हो सकने वाले अभिकरण भी अपने आचरण में पितृसत्तात्मक सभ्यता के ही पैरोकार नज़र आते हैं। इस अंश के इस तथ्य से कैसे असहमत हो सकते हैं कि 'पितृसत्ता की शक्तियों को बलात्कार इसलिए बुरा लगता है

क्योंकि यह एक ऐसा अपराध है जिससे परिवार की इज़्ज़त को बट्टा लगता है, जबकि नारीवादी ख़ेमा इसकी निंदा इसलिए करता है क्योंकि उसे यह स्त्री की स्वायत्तता और उसकी दैहिक अखंडता के प्रति अपराध लगता है। .....यह भिन्नता बलात्कार की लड़ाई को दो विरोधी ध्रुवों की ओर ले जाती है।' (पृ.110) पितृसत्तात्मक सोच बलात्कार को मृत्यु से भी भयावह मानता है। इसका परिणाम यह होता है कि बलात्कार से किसी भी क़ीमत पर स्त्री को बचाने की प्रवृत्ति महिला को पितृसत्ता की सख़्त p ´ ± में बाँध देता है और 'बलात्कार मृत्यु से भी अधिक भयावह कलंक है' यह सोच स्त्री को स्वयमेव पितृसत्ता की पहरुआ बना देती है। लेखिका ने न्यायपालिका, मानवाधिकार आयोग व संवैधानिक पदों के ऐसे कई उदाहरण दिए हैं जिसमें बलात्कार के लिए दोषी, महिला की स्वच्छंदता को ही साबित किया गया है और समाधान मात्र यह बताया गया है कि स्त्री क़ैदख़ाने की जीवनचर्या में ही सुरक्षित है।

बलात्कार की जो वैधानिक व सामाजिक अवधारणा प्रचलन में है वे सब पितृसत्तात्मक प्रवृत्ति के ही पालक हैं। निवेदिता मेनन, फ्लेविया एग्नेस के माध्यम से कहती हैं '...बलात्कार संबंधी क़ानूनी पवित्रता, कौमार्य, विवाह के लाभों तथा स्त्री-यौनिकता के भय पर आधारित है। ...स्त्रियों पर होने वाले यौन या ग़ैर-यौनिक हमलों के मुक़ाबले यह (बलात्कार) पितृवंशीय संपत्ति से संबंधित अधिकारों तथा पितृसत्ता की सत्ता-संरचना के लिए ज़्यादा बड़ा ख़तरा पेश करता है। एग्नेस का यह मानना है कि बलात्कार की यह समझ इसी सत्ता-संरचना पर आधारित है।' (पृ. 111, 112) इसी बात को लेखिका आगे स्पष्ट करती है, 'जहाँ धारा 375 प्रजनन के पितृवंशीय स्वरूप तथा संपत्ति के तंत्र की रक्षा करने का काम करती है, वहीं धारा 377 सामाजिक व्यवस्था के लिए एक ज़्यादा बड़े ख़तरे विषमलिंगी यौनिकता के अनिवार्य ढाँचे का उल्लंघन करने वालों को दंडित करती है।' (पृ.112) बलात्कार की संकीर्ण अवधारणा एवं दोषी को सज़ा देने की प्रक्रिया की जटिलता एवं पितृसत्तात्मक सोच को देखते हुए इस नारीवादी माँग को किताब में जगह दी गई है कि 'क़ानून की शब्दावली से बलात्कार नामक शब्द हटाकर उसकी जगह 'यौन आपराधिक आचरण' जैसे शब्द का प्रयोग किया जाना चाहिए। ताकि उसमें अगल-अलग स्तर के यौन हमले तथा इन हमलों की गंभीरता के अनुरूप सज़ा का प्रावधान किया जा सके।' (पृ.112) पुस्तक के इस अध्याय में अनेक विश्लेषणोपरांत यह स्थापित किया गया है कि बलात्कार व यौन हिंसा का समाधान स्त्रियों को अनेक संकीर्णताओं से बाँधने में नहीं है अपितु ऐसी भुक्तभोगी महिलाओं को आत्मविश्वास का मंत्र देने की आवश्यकता है। ऐसा तब हो सकेगा जब उन महिलाओं को यह विश्वास दिलाया जाए कि वे निर्दोष हैं और उन्हें हर आवश्यक सहयोग सुलभ होगा तथा उनकी स्वतंत्रता व स्वच्छंदता और अधिक संतुलित स्वरूप में उन्हें उपलब्ध होगी। इस अध्याय के उपशीर्षक 'मन्नै न्याय चाहिए' की प्राण-

प्रतिष्ठा ही संपूर्ण नारीवाद का सर्वोच्च साध्य है और इसे स्वीकार्य बनाना इस किताब के विशेष मक़सदों में से एक मक़सद है।

नारीवादी तथा महिलाएँ

किताब के अगले हिस्से का शीर्षक है 'नारीवादी तथा महिलाएँ'। शीर्षक ग़ौरतलब है, इस मायने में कि क्या नारीवाद से महिलाएँ अलग हैं? या क्या नारीवाद महिलाओं मात्र से संबंधित नहीं है? उत्तर में लेखिका के इस कथन को देखा जा सकता है 'नारीवाद वस्तुतः स्त्रियों तक सीमित न होकर इस स्वीकारोक्ति का नाम है कि जेंडर के आधुनिक विमर्शों में मनुष्य जाति को किस तरह 'पुरुष' और 'स्त्री' के खाँचे में बदल दिया जाता है। ...नारीवाद सिर्फ़ जेंडर से सरोकार नहीं रखता बल्कि उसका वास्ता इस समझ से भी है कि वर्ग (घरेलू नौकरों के मामले में), जाति तथा समलैंगिक राजनीति (समलैंगिक पुरुषों, हिजड़ों तथा उभयलिंगी अस्मिताओं के मामले में) ने जेंडर के विचार को किस प्रकार जटिल बना दिया है।' (पृ.151) साफ़ है कि नारीवाद जेंडर और जेंडर की राजनीति से सीधा मुठभेड़ करता है। महिला अस्मिता इस नारीवाद का एक अपरिहार्य अंश अवश्य है। इस संदर्भ में समान नागरिक संहिता पर भी मूल्यवान विमर्श प्रस्तुत हुआ है। समान नागरिक संहिता के संदर्भ में लेखिका के इस विचार को स्वीकारने की, निस्संदेह आवश्यकता है कि समान नागरिक संहिता महिलाओं की अस्मिता के संरक्षण मात्र हेतु आवश्यक है। यह किसी भी धर्म या पहचान से बिल्कुल भी संबंधित नहीं है। इस संदर्भ में लेखिका की यह चिंता जायज़ है कि 'सार्वजनिक विमर्श में समान नागरिक संहिता का मुद्दा कभी महिलाओं के मुद्दे के रूप में नहीं उठाया गया। उसे हमेशा राष्ट्रीय अखंडता बनाम समुदाय के सांस्कृतिक अधिकारों के फ्रेम में रखकर पेश किया जाता है।' (पृ.153) वास्तव में समान नागरिक संहिता जिन विषयों को न्यायोचित बनाना चाहता है वे हैं विवाह, विवाह-विच्छेद, उत्तराधिकार, भरण-पोषण एवं अभिभावकत्व आदि। लगभग सभी समुदायों में इन विषयों का निर्धारण उसके धर्म या रीति-रिवाजों से होते चले आ रहे हैं। इन्हें समुदायों के निजी क़ानून भी कहते हैं जिसे पर्सनल लॉ भी कहा जाता है। अतः जैसे ही समान नागरिक संहिता पर कोई विमर्श शुरू होता है वह तुरंत या तो पहचान का संकट बन जाता है या राष्ट्रीय एकता का प्रतीक हो जाता है। नतीजा यह होता है कि समान नागरिक संहिता महिला-विमर्श के जिन मुद्दों को उठाना चाहता है वे दरकिनार रह जाते हैं। अगर नारीवादी निगाह से देखा जाए तो समान नागरिक संहिता महिला अस्मिता की सात्विक स्थापना के अनेक सवालों का जवाब है।

इसी अध्याय में लेखिका ने उन स्थितियों की भी संतुलित पड़ताल की है जिसमें संपूर्ण विश्व में इस्लाम को और मुसलमानों को निशाना बनाया जा रहा है, इस्लाम को कभी प्रतिगामी साबित करके तो कभी दहशतगर्दी के पैरोकार के रूप में दिखा कर। लेखिका यह महसूस करने में भी नहीं चूकी है कि इस्लाम धर्म के तथाकथित

लेखिका की यह चिंता जायज़ है कि 'सार्वजनिक विमर्श में समान नागरिक संहिता का मुद्दा कभी महिलाओं के मुद्दे के रूप में नहीं उठाया गया। उसे हमेशा राष्ट्रीय अखंडता बनाम समुदाय के सांस्कृतिक अधिकारों के फ्रेम में रखकर पेश किया जाता है।'

समर्थक जितना इसे संकीर्ण बनाते जा रहे हैं उतना ही प्रतिपक्षी को अपने मक़सद में कामयाबी मिलती जा रही है। किताब *नारीवादी निगाह से* की इन पंक्तियों को अस्वीकारने की कोई वजह नहीं है कि 'स्त्री, नारीवादी राजनीति का एक सुस्पष्ट विषय या कोई प्राकृतिक और स्व-प्रत्यक्ष अस्मिता नहीं है। ...कोई भी 'महिला' पहले से हिंदू या मुसलमान, ऊँची जाति की या दलित, श्वेत या अश्वेत नहीं होती, इसके उलट, असल चीज़ वह राजनीतिक चुनौती होती है जिससे मुक़ाबला करने वाले 'लोग' कभी 'दलित', कभी 'मुसलमान' और कभी 'स्त्रियों' की संज्ञा से जाने जाते हैं। नारीवाद की सफलता उसकी इसी क्षमता में निहित है कि वह 'लोगों' को अलग-अलग संदर्भों में नारीवादी होने के लिए प्रेरित कर सके।' (पृ. 169)

पीड़ित या एजेंट

इसके बाद के अध्याय का शीर्षक है 'पीड़ित या एजेंट'। ज़ाहिर है कि इस अंश में यह समझने की कोशिश की गई है कि स्त्री को कब भुक्तभोगी या पीड़ित माना जाए और किन स्थितियों में उसे वह एजेंट माना जाए जो सत्ता का भागीदार भी है और अपनी मजबूत स्थिति पाने के लिए बेचैन भी है। लेकिन लेखिका उपशीर्षक के माध्यम से सतर्क भी करती है कि 'इस तथ्य से ज़्यादा सार्वभौम या बुनियादी कुछ भी नहीं है कि हर क्षेत्र में जो भी वांछनीय है उसकी सीमाएँ पहले से तय रहती हैं। 'चुनाव करने की आज़ादी हमेशा एक ऐसी चौहद्दी में सीमित रहती है जिसमें कोई हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता। यह चौहद्दी आर्थिक वर्ग, नस्ल, जाति तथा ज़ाहिर तौर पर जेंडर द्वारा निर्धारित होती है। चुनाव करने की आज़ादी कभी निरपेक्ष नहीं होती...' (पृ. 173) इस अध्याय में लेखिका ने वस्तुकरण, यौन कर्म, बार-डांसर, मानव व्यापार, किराये की कोख, पोर्नोग्राफ़ी, गर्भपात इत्यादि विषयों को उठाया है। इन सारे विषयों में कई ऐसे विषय हैं जिसमें सतही तौर पर दिखता है कि यह निर्णय नारी द्वारा किया गया है, यथा गर्भपात, यौन कर्म का चुनाव, किराये की कोख व बार-डांसर आदि, परंतु देखा जाना चाहिए कि इन मुद्दों पर निर्णय लेने में एक महिला कहाँ तक स्वतंत्र होती है। एक स्त्री की सामाजिक व आर्थिक स्थितियों का प्रभाव महिला की चयन प्रक्रिया को हर हाल में विवश करता है। इसे ऐसे भी कह सकते हैं कि पितृसत्तात्मक

वर्चस्ववाद ऐसे मामलों में सर्वोपरि व निर्णायक होता है। संभव है कि यौन कर्म का चुनाव किसी महिला ने स्वेच्छा से अपनाया हो परंतु विकल्प के अभाव की विवशता अथवा आर्थिक शोषण क्या वह स्थिति नहीं है कि एक महिला यौन कर्म को अधिक 'आरामदेह' मान बैठती है। अमर्त्य सेन के इस कथन को यहाँ स्मरण करना होगा '...व्यक्ति को चीज़ों का चुनाव अपने बजट के अनुसार करना पड़ता है। प्राथमिक अर्थशास्त्र की यह बात राजनीति और समाज के जटिल निर्णयों पर भी लागू होती है' (पृ.174) कई ऐसे मुद्दों को इस अंश में उठाया गया है उन्हें निषिद्ध करने या उन्मूलित करने के बजाय लेखिका का मानना है कि इन स्थितियों को उसके एजेंट के पक्ष में मानवीय, स्वच्छंद, स्वतंत्र और गरिमापूर्ण बनाने की आवश्यकता है। इस प्रकार के वातावरण की रचना की ज़रूरत है कि महिला प्रत्येक निर्णय स्वस्थ्य व स्वतंत्र मानस से ले सके। साफ़ है कि नारीवाद को स्त्रियों की स्वायत्तता की स्थितियाँ बनानी हैं और उनके चुनाव की आज़ादी में बाधक वर्चस्ववादी मूल्यों को पिघलाना है। जेंडर की मानसिकता के पीड़ित को न्याय देना और जेंडर के एजेंट को न्यायोचित शक्ल देना, विकल्पहीन मक़सद है। नारीवाद को अपने लक्ष्य का संधान इसी दृष्टिकोण के आधार पर करना होगा।

निष्कर्ष

पुस्तक *नारीवादी निगाह से* नारीवाद के अर्थ अवधारणा, भूमिका और साध्य पर अनेक नए आयाम से विश्लेषण व विमर्श प्रस्तुत करती है। लेखिका सिद्धहस्त शैली में 'जेंडर', 'महिला-सशक्तीकरण' 'जेंडर समानता', 'विकास की राजनीति' एवं 'महिलाओं की सक्रिय भागीदारी का सरकारीकरण' इत्यादि शब्दों और उपक्रमों में अंतर्निहित पितृसत्तावादी और वर्चस्ववादी मनसूबों को उजागर करती हैं। कई स्थानों पर पाठक को चकित होना पड़ता है जब उसे यह अनुभव होता है कि जिसे वह स्त्री समानता का स्तंभ मानता था वह शुद्ध वर्चस्ववादी मानसिकता का पोषक है, उदाहरणार्थ – 'नारीवाद की शब्दावली में 'जेंडर' का प्रयोग 'स्त्री' की धारणा को अस्थिर करने के लिए किया जाता है, ...विकास के 'जेंडरीकरण' का अर्थ है विकास के नियमन में महिलाओं की सेवाएँ लेना...महिला सशक्तीकरण की राष्ट्रीय नीति (2001) में कहा गया है कि उसका एक उद्देश्य विकास की प्रक्रिया में जेंडर के परिप्रेक्ष्य को मुख्यधारा की तरह शामिल करना है। ...यहाँ 'जेंडर' तथा 'महिला' को किस तरह एक-दूसरे का पर्यायवाची बना दिया गया है।' (पृ.208)

लेखिका निवेदिता मेनन ने 'नारीवाद' को जो भावार्थ प्रदान किया है वह बहुत विस्तृत व बहुआयामी है। यह स्त्रियों मात्र तक सीमित नहीं है। यह 'नारीवाद', जाति, धर्म, वर्ग, संप्रदाय, समाज, कॉरपोरेट व राजनीति सभी संदर्भों मे वर्चस्ववादी सोच को चुनौती है। इस तरह 'नारीवाद' उनके साथ है जो इस 'वर्चस्ववादी सोच' से लड़ाई लड़ रहे हैं वे दलित, अल्पसंख्यक, स्त्री व क्वीयर कोई भी हो सकता है। ध्यान यह भी रखना है कि

नारीवाद अंतिम लक्ष्य या सत्य नहीं है बल्कि परिवर्तन की एक प्रक्रिया है, सनातन वर्चस्ववादी मानस के परिमार्जन की एक प्रक्रिया है, जो कि जीवन में इतना निहित हो चुका है कि उसके ख़िलाफ़ सब कुछ पाप, नारकीय, संस्कृति का पतन और अश्लील लगने लगता है।

किताब *नारीवादी निगाह से* स्त्री-अस्मिता की स्थापना के संदर्भों में प्रत्येक एकांगी और असंतुलित शक्ति से मुठभेड़ का आह्वान करती है। जब वर्चस्ववादी मानस पिघलकर संतुलित चेतना का स्वामी हो जाएगा तो स्त्री-अस्मिता भी स्वस्थ अर्थों के साथ स्थापित हो जाएगी। लेखिका ने नारीवाद के अर्थ भावार्थ, तौर-तरीक़ों व सामाजिकता पर एक गंभीर विश्लेषण प्रस्तुत किया है। निवेदिता मेनन ने नारीवाद के रास्ते में आने वाले प्रायोजित और तथाकथित संस्कारजनित साज़िशों की साहसिक पड़ताल ही नहीं की है अपितु अनेक सैद्धांतिक ढकोसलों को भी ढहाया है। किताब के अनुवादक नरेश गोस्वामी ने बहुत अच्छा अनुवाद किया है। परंपरागत वर्चस्ववादी शैली पर प्रहार करने वाली इस रचना का हिंदी भाषा में अनुवाद करना सराहनीय, साहसिक एवं प्रशंसनीय प्रासंगिक कार्य है। अंग्रेज़ी भाषा की तुलना में हिंदी में ऐसी मौलिक किताबें कम आ रही हैं। इस दृष्टि से अनुवादक नरेश गोस्वामी ने उल्लेखनीय कार्य किया है। यद्यपि अनुवाद की सीमाओं का कही-कहीं अनुभव होता है। यदि कुछ शब्दों के साथ उनके मूल अंग्रेज़ी शब्द भी लिख दिए जाते तो उसे संदर्भ सहित समझना और सरल होता। नारीवाद के ख़िलाफ़ जिस प्रकार का वातावरण वर्तमान में है और वर्चस्ववादी सनातन मानस जिस प्रकार दिन-प्रतिदिन शक्तिशाली होता प्रतीत हो रहा है, यह कहना असंदर्भित नहीं होगा कि किताब *नारीवादी निगाह से* अपने समय से आगे की सोच का प्रतिनिधित्व करती है परंतु सात्विक सत्य यह भी है कि नारीवाद को अपनी सामरिक रूप-रेखा, सामयिक योजना और भविष्य के कार्यो का निर्धारण इसी प्रकार के साहित्य के संदर्भों में ही करना होगा। इस किताब को पढ़ने के बाद सहमति का जो साहसिक स्तर स्वयमेव निर्मित हो जाता है उसे लेखिका के शब्दों मे इस प्रकार कहा जा सकता है 'आज नारीवाद का क्षेत्र अलग-अलग वर्गों और जाति-समूहों की अनंत और नई ऊर्जा तथा मानक नारीवाद के प्रतिस्पर्धी दावों से खदबदा रहा है। नारीवाद धीर-घीरे ही आता है। लेकिन उसका आना कभी रुकता नहीं।' इस पुस्तक का नारीवाद एक सात्विक सत्य है जिसे देर-सबेर स्वीकारना होगा।